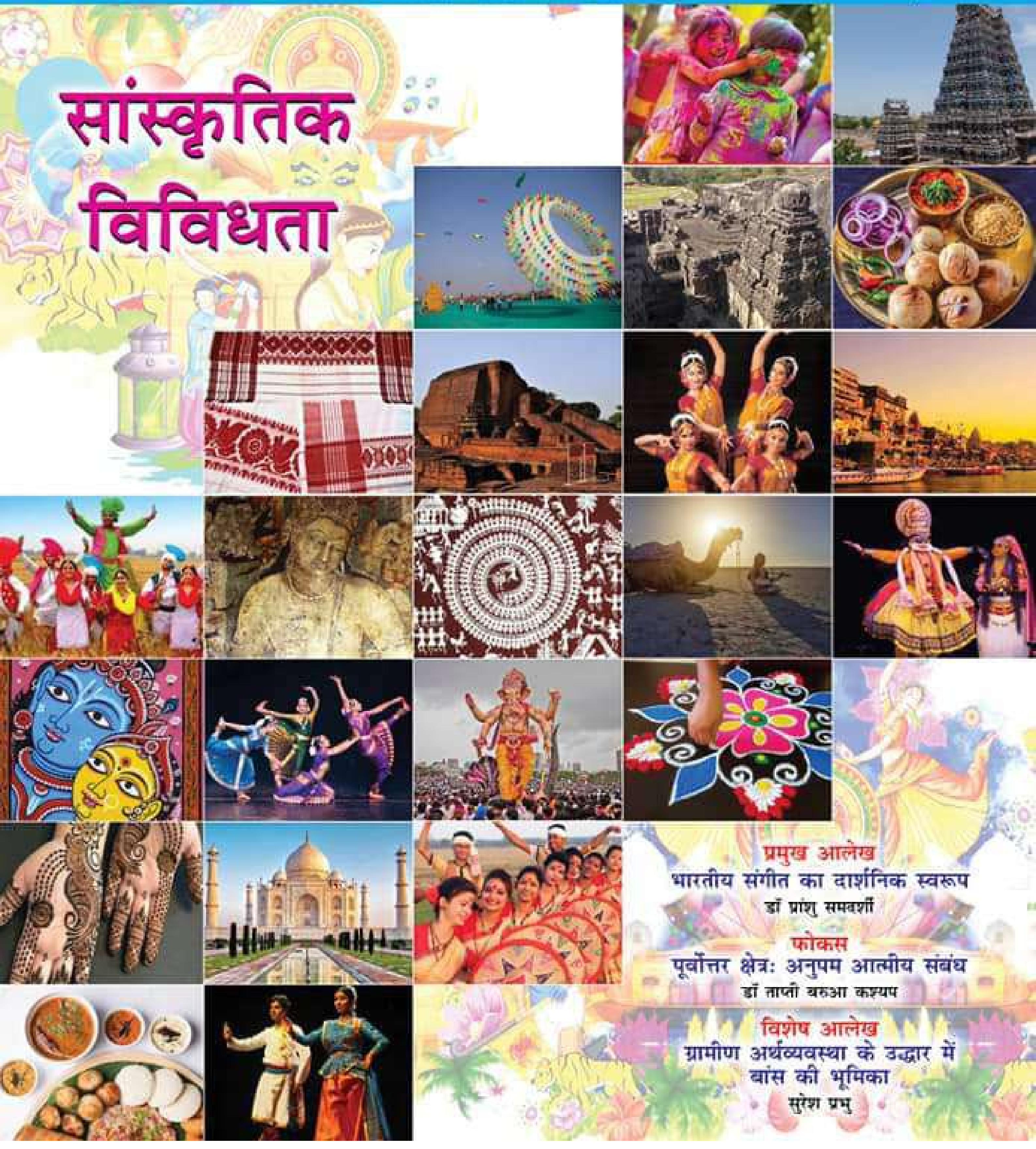
ISSN-0971-8397

योजना

अगस्त 2020 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 22



सांस्कृतिक विविधता

प्रमुख आलेख
भारतीय संगीत का दार्शनिक स्वरूप
डॉ प्रांशु समदर्शी

फोकस
पूर्वोत्तर क्षेत्र: अनुपम आत्मीय संबंध
डॉ ताप्ती बरुआ कश्यप

विशेष आलेख
ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उद्धार में बांस की भूमिका
सुरेश प्रभु

योजना

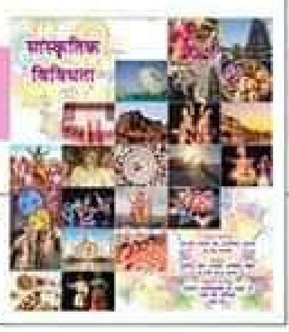
वर्ष : 64 अंक : 8

अगस्त 2020

श्रावण-भाद्रपद, शक संवत 1942

मूल्य : ₹ 22 पृष्ठ : 60

वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in



प्रधान संपादक : धीरज सिंह

वरिष्ठ संपादक : कुलश्रेष्ठ कमल

संपादक : डॉ ममता रानी

संपादकीय कार्यालय

648, सूचना भवन, सीजीओ परिसर, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003

दूरभाष (प्रधान संपादक): 24366672

उत्पादन अधिकारी : के रामालिंगम

आवरण : गजानन पी धोपे

योजना मंगवाने की दरें

एक वर्ष: ₹ 230, दो वर्ष: ₹ 430, तीन वर्ष: ₹ 610

पत्रिका न मिलने की शिकायत अथवा योजना की सदस्यता लेने या पुराने अंक मंगाने के लिए pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या संपर्क करें-

दूरभाष: 011-24367453

(सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: 9:30 बजे से शाम 6:00 बजे तक)

पत्राचार का पता :

गौरव शर्मा, संपादक, पत्रिका एकांश

प्रकाशन विभाग, कमरा सं. 56, भूतल,

सूचना भवन, सीजीओ परिसर, लोधी रोड,

नयी दिल्ली-110003

@DPD_India

इस अंक में









प्रकाशन विभाग के देश भर में स्थित विक्रय केंद्रों की सूची के लिए देखें पृ.सं. 18

हिंदी, असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, मराठी, ओड़िया, पंजाबी तथा उर्दू में एक साथ प्रकाशित।

'विविध परिदृश्य' सामग्री संस्कृति मंत्रालय से साभार

संपादकीय



संस्कृतियों का संगम

> *"इस विश्व में सच्चा आनंद मनुष्य के सही इहलौकिक लक्ष्यों में निहित है और सच्चा आनंद आत्मा, मन और शरीर के बीच स्वाभाविक समन्वय स्थापित करने और उसे बनाए रखने में है। किसी संस्कृति का मूल्यांकन इस बात से होता है कि उसने सामंजस्य की इस स्थिति को प्राप्त करने और अपने अभिव्यंजनात्मक उद्देश्यों और गतिविधियों के सही माध्यमों को किस सीमा तक खोज लिया है।"*
>
> *– भारतीय संस्कृति पर श्री अरविन्द के विचार*

कला और संस्कृति हमारी इंद्रियों के लिए आनंद का विषय हैं। कलात्मक अभिव्यक्तियों में कुछ ऐसी क्षमता होती है कि कभी-कभी ये हमें सामान्य, लौकिक जीवन से परे भावातीत लोक में ले जा सकती हैं। ईश्वर पर आस्था रखने वालों ने जब सर्वशक्तिमान और उसकी सृष्टि की प्रशंसा के लिए गाने, नाचने, चित्रांकन या प्रदर्शन जैसी किसी एक कलाविधा को चुना तो उसका यही प्रयास कला और संस्कृति के जरिए आध्यात्मिक संपर्क का माध्यम बना। जब कलाकार इनमें से किसी एक विधा में अपने को तल्लीन कर लेते हैं तो वे जीवन से परे किसी वृहत्तर सत्ता के साथ जुड़ाव अनुभव करते हैं और ऐसे में वे अपने दर्शकों को जो अनुभव कराते हैं वह कला की सम्मोहित करने वाली प्रकृति को दर्शाता है।

भारतीय समाज का ताना-बाना संगीत, नृत्य और वास्तुशिल्प की विभिन्न विधाओं, उत्सव-त्योहारों, दृश्य और निष्पादन कलाओं, लोकगाथाओं तथा रीति-रिवाजों से मिलकर बना है। ये सब मिलकर समाज की सामूहिक पहचान कायम करते हैं। ये विभिन्न कला विधाओं के माध्यम से लोगों को एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान भी प्रदान करते हैं।

सदियों पुरानी कहावत 'कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पे वानी' देश भर में नदियों की लहरों की तरह प्रवाहित होने वाले भाषायी रूपों की विविधता को दर्शाती है। सदियों के ऐतिहासिक उद्विकास से हमारी संस्कृति और भी अधिक समृद्ध हुई है और उसने सभी के सर्वोत्कृष्ट तत्वों को अंगीकार और आत्मसात कर समग्र संस्कृति की एक नयी धारा को जन्म दिया है। इस अनोखी विविधता में नयी गाथाएं उपजी हैं-ऐसी गाथाएं जो लोगों, उनकी जीवन शैलियों, उनके उत्सव-त्योहारों तथा उनकी उत्सवधर्मिता और कला विधाओं को आकार प्रदान करती हैं। ये गाथाओं का विभिन्न क्षेत्रों के साथ अपना अलग संवाद कायम करती हैं। देश में सुदूर पूर्व से लेकर सुदूर दक्षिण तक रामायण और महाभारत की गाथाओं को छाया-कठपुतलियों से ले कर विभिन्न प्रकार की निष्पादन कला विधाओं में प्रस्तुत किया गया है। भारत में गायन परम्पराओं और अभिव्यक्तियों तथा निष्पादन कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति के अनगिनत रूप हैं। सामाजिक रीति-रिवाज, परम्पराएं और उत्सव, प्रकृति और समूचे ब्रह्मांड से संबंधित परम्पराएं और पारम्परिक हस्तशिल्प जैसी चीजें हमारी अमूर्त बिरासत की लंबी सूची का हिस्सा हैं।

'योजना' के इस अंक में हम एक राष्ट्र के रूप में भारत की उस धारणा की महिमा बताने का प्रयास है जिसमें देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की विविधतापूर्ण संस्कृतियां समाहित और समन्वित होकर एक-दूसरे से संवाद कायम करती हैं और जिसकी भव्य अभिव्यक्ति हमारे विविधतापूर्ण खान-पान, संगीत, नृत्य, रंगमंच, सिनेमा और फिल्मों, हस्तशिल्प, खेलकूद, साहित्य, उत्सव-त्योहारों, चित्रकला, मूर्तिकला आदि के रूप में होती है। इससे लोगों को हमारी संस्कृति में अंतर्निहित समन्वय और एकात्मता की स्वाभाविक भावना को समझने में मदद मिलती है। मैं अपने लेख का इस विनम्र निवेदन के साथ समापन करना चाहूंगा कि सीमित संख्या में पृष्ठों वाली पत्र-पत्रिकाएं भारतीय संस्कृति जैसे व्यापक और बहुआयामी विषय के साथ न्याय नहीं कर सकतीं। तमाम भूल-चूक के बावजूद यह अंक हमारी विविधतापूर्ण समृद्ध संस्कृति, विरासत व परम्पराओं की रंगबिरंगी झलक को पूरी समग्रता में प्रस्तुत करने और उन्हें आपस में जोड़ने वाले सूत्रों को उजागर करने का प्रयास है। आखिरकार संस्कृति का निर्माण लोग करते हैं और वही इसे आने वाली पीढ़ियों को सौंपते हैं।

'योजना' के इस अंक की सफलता इस तथ्य में निहित है कि इससे पाठकों को उनके अपने राज्य से काफी भिन्न राज्यों और उनकी संस्कृतियों के बारे में बड़े खूबसूरत तरीके से लिखे गये लेखों के जरिए जानने-समझने का मौका मिलेगा। इससे वे कुछ नया भी सीख पाएंगे और अपने ही लोगों के साथ और भी बेहतर तरीके से संवाद स्थापित कर सकेंगे। ■

भारतीय संगीत का दार्शनिक स्वरूप

डॉ प्रांशु समदर्शी

भारतीय शास्त्रीय संगीत ने भारत की समग्र संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसके अलावा, भारतीय शास्त्रीय संगीत के संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 'शास्त्रीय' शब्द केवल यह सुझाता है कि शास्त्र की मौलिक परंपरा के अनुसार इसका आधार नियत परिपाटी का अनुसरण करता है। इस संगीत का भारतीय नाम शास्त्रीय संगीत है। इसे कभी-कभी राग संगीत के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि यह राग है जो इस कला विधा की संरचना के केंद्र में है। इस प्रकार, 'शास्त्रीय' शब्द किसी पुरानी शैली या समय-अवधि को नहीं दर्शाता है जैसा कि पश्चिमी संगीत परंपरा में मौजूद है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत चाहे वह हिंदुस्तानी हो या कर्नाटक उसमें अनिवार्य रूप से एक आध्यात्मिक अंश अन्तर्निहित होता है। इस संगीत का उद्देश्य असाधारण अनुभव प्रदान करना है जो श्रोताओं को एक निराकार और अवर्णीय लोक में ले जाता है। हालांकि विश्व में संगीत की कई महान परंपराओं का किसी-न-किसी प्रकार की आध्यात्मिकता के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध है फिर भी भारतीय शास्त्रीय संगीत इस पर विशेष महत्त्व देता है।

भारतीय संगीत के इतिहास पर नज़र डालें तो ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से मंदिर शास्त्रीय संगीत की कलात्मक अभिव्यक्तियों के कई विविध रूपों के लिए एक मंच प्रदान करते रहे हैं। और यह भक्ति या नि:स्वार्थ श्रद्धा थी जो भारत में विकसित विभिन्न कला रूपों का अंतर्निहित सार बनी। भारतीय शास्त्रीय संगीत के कलात्मक सिद्धांतों को इस तरह से सूत्रबद्ध और संरचित किया गया है कि यह संगीतकारों के लिए एक आंतरिक यात्रा का माध्यम बन जाता है और वे अपने अंतर्मन से कहीं गहरे जुड़ जाते हैं। यह एक कारण है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत का वर्णन करने में 'आध्यात्मिक' शब्द का बहुधा उपयोग किया जाता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का उद्‌भव पौराणिक या मिथकीय अतीत से हुआ है। अगर हम ये मान भी लें कि किंवदंतियां सटीक तथ्य नहीं हैं पर हम यह भी जानते हैं कि इसका अर्थ यह नहीं है कि वे किसी अन्य स्तर पर वास्तविक नहीं हो सकती हैं। उनकी वास्तविकता आंतरिक अनुभवों में प्रकट हो सकती है। संगीतकार जिन्हें भारतीय सांस्कृतिक धरोहर उससे संबंधित प्रतीकों और मिथकों की गहन समझ है अमूर्त, संवेदी, प्रेरक और आध्यात्मिक लोक का अनुभव करने के लिए अक्सर संगीत के विन्यास और रचना के शब्दों का उपयोग करते हैं।

नादोपासना - आद्य ध्वनि का आह्वान

शास्त्रीय संगीत के एक सच्चे साधक के लिए संगीत साधना नादोपासना हुआ करती थी - यानी आद्य ध्वनि का आह्वान। इन साधकों के लिए संगीत परम सत्य की प्राप्ति की एक आंतरिक यात्रा बन जाता है। शास्त्रीय संगीत के ऐसे साधक दर्शकों की रुचि के अनुसार गाने या बजाने का प्रयास नहीं करते हैं। जब वे सार्वजनिक प्रदर्शन दे रहे होते हैं, तब भी उनकी चेतना उनके भीतर किसी उच्च स्तर पर चली जाती है और फिर दर्शकगण स्वत: उस स्तर तक उठ जाते हैं। इस प्रकार, कलाकार के साथ-साथ दर्शकों को भी शास्त्रीय संगीत की पहुंच का वास्तविक अनुभव होता है।

यहां तक कि संगीत के इन साधकों के लिए संगीत प्रदर्शन के समय राग का चयन और संयोजन भी उस क्षण के अंतर्ज्ञान और प्रेरणा का परिणाम है। मसलन यह कहा जाता है कि दिवंगत ध्रुपद



लेखक स्पिक मैके के पूर्व राष्ट्रीय सचिव और अमृता विश्व विद्यापीठम बेंगलुरु में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। ईमेल: praanshu@gmail.com



भारत रत्न कमरूद्दीन बिस्मिल्लाह खान



पंडित हरिप्रसाद चौरसिया

वादक उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर से एक बार एक गायन प्रस्तुति से पहले पूछा गया था कि वह कौन-सा राग गाने वाले हैं। ऐसा माना जाता है कि उनका जवाब था, "मुझे अभी तक नहीं पता है। मैं ग्रीन रूम में तानपुरे की आवाज़ का इंतज़ार करूंगा और तब मुझे मालूम होगा कि मुझे क्या गाना चाहिए।'' यह अजीब लग सकता है लेकिन यह भारतीय शास्त्रीय संगीत के कई महान फनकारों के लिए एक वास्तविकता है।

इस प्रकार, संगीत के ऐसे साधकों के लिए उनकी कला शैली मात्र मनोरंजन प्रदान करने का साधन ही नहीं है बल्कि अपने श्रोताओं को सौंदर्यबोध का आस्वादन करने के गहन अनुभवों को प्रदान करना है।

गुरु-शिष्य और घराना परंपरा

गुरु-शिष्य परंपरा एक और अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है जो भारत की सभी शास्त्रीय संगीत परंपराओं का अभिन्न भाग है। सदियों से, गुरु-शिष्य-परंपरा ने महान संगीतज्ञों की संगीत शैलियों की पेचीदगियों और गहन अनुभवों को आगे बढ़ाने में समर्थ किया है। एक महान गुरु हजारों वर्षों के ज्ञान का समामेलन है। इसके लिए शिष्यों की ओर से बहुत अधिक त्याग की आवश्यकता होती है, क्योंकि उनमे गुरु द्वारा सौंपी गयी धरोहर को ग्रहण करने के लिए अपार शक्ति और विश्वास होना चाहिए। यह अनिवार्य रूप से आदर और बिना शर्त अनुसरण का एक पवित्र रिश्ता होता है जिसने भारतीय संस्कृति में ज्ञानोपार्जन की हर शाखा को प्रतिष्ठित किया है।



उत्तर भारतीय या हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के संगीत घरानों ने भी अनूठी शैली प्रस्तुत करके अपने संगीत की विविधता में योगदान दिया है। संगीत की विशिष्ट शैलियों के इन घरानों ने वंशानुक्रम के माध्यम से रागों और संगीत दर्शन के अनूठे सिद्धांतों को संरक्षित और सारभूत किया है और इस प्रकार गुरु-शिष्य या पारिवारिक परंपरा के माध्यम से एक विकसित शैलीगत स्वरूप विरासत में सौंपा है। एक घराना भी वृहद् संगीतविद्या की विचारधारा दर्शा सकता है।

भारतीय संगीत की विभिन्न शैलियों की उत्पत्ति और ऐतिहासिक विकास

भारतीय संगीत की उत्पत्ति वैदिक स्तोत्रों और मंत्रों के उच्चारण में देखी जा सकती है। छांदोग्य उपनिषद् में गान (संगीत विधाएं) की सात शैलियों का उल्लेख है जिसमें वैदिक मंत्रों के स्वर के महत्व पर प्रकाश डाला गया है जिनका उच्चारण पूर्ण शुद्धता के साथ किया जाना चाहिए जो वैदिक मंत्र की प्रभावोत्पादकता के लिए एक महत्वपूर्ण है। इस उपनिषद् में आगे कहा गया है सभी स्वरों की आत्मा मुख्य वैदिक देव इंद्र हैं।[4]

वैदिक युग के बाद भारतीय कला विधाओं का सबसे प्राचीन संकलन, नाट्य शास्त्र है। इसे 200 बी.सी.इ. (कॉमन एरा पूर्व) से 200 सी.इ. (कॉमन एरा) के बीच संकलित किया गया था। ऐसा माना जाता है कि ऋषि भरत मुनि ने ऋग से वाणी, साम से संगीत, यजुर से अभिनय और अथर्ववेद से भाव को एकीकृत करके नाट्य की सृजना की। यह संगीत के वैदिक विज्ञान गंधर्व वेद की उत्पत्ति थी।

10 वीं शताब्दी सी.इ. के आस-पास मौजूद वेदों के अनुष्ठानिक जाप और प्रदर्शन कलाओं की गायन शैली से जुड़ी एक अन्य विशेषता पर कश्मीर के आचार्य अभिनवगुप्त ने गौर किया। उन्होंने कर्मकाण्डी गंधर्व और कलुषित ध्रुव-गण के अंतर का उल्लेख किया है।





'शास्त्रीय' शब्द केवल यह सुझाता है कि शास्त्र की मौलिक परंपरा के अनुसार इसका आधार नियत परिपाटी का अनुसरण करता है। इस संगीत का भारतीय नाम शास्त्रीय संगीत है। इसे कभी-कभी राग संगीत के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि यह राग है जो इस कला विधा की संरचना के केंद्र में है। इस प्रकार, 'शास्त्रीय' शब्द किसी पुरानी शैली या समय-अवधि को नहीं दर्शाता है जैसा कि पश्चिमी संगीत परंपरा में मौजूद है।

बहुवाद और अनन्यवाद का समावेश

यद्यपि भारतीय शास्त्रीय संगीत के विभिन्न वर्गों में एकीकरण के लिए आध्यात्मिकता कारक रही है, भारत एक समृद्ध और विविध संगीत विरासत से संपन्न है। इसकी संगीत विविधता भी इसके भूगोल और संस्कृतियों से नमूदार हैं। संगीत परंपरा के अपने विभिन्न रूपों के बीच इस विविधता के पीछे एक और कारण इसकी विशिष्ट जातीयता है। प्राचीन ग्रन्थ नाट्यशास्त्र ने इस विशिष्टता को अभिलेखित किया और उनका भौगोलिक या जातीय नामकरण करते हुए उन्हें वर्गीकृत किया। नाट्य शास्त्र में उत्तर भारत की संगीत शैली को 'उदिच्य' के रूप में उल्लिखित किया गया है जबकि दक्कन क्षेत्र में प्रचलित शैलियों को आंधिय कहा गया है। इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविधता का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ मौजूद है।

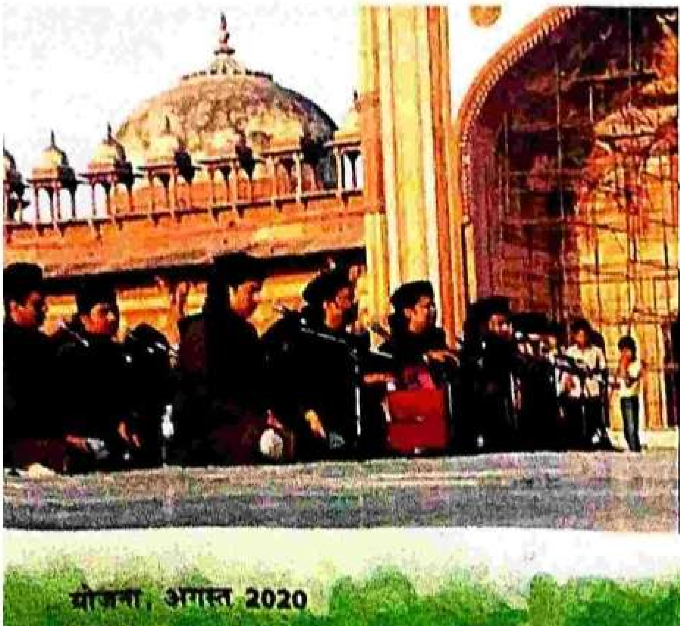
खयाल संगीत का उद्भव

हिन्दुस्तानी संगीत की खयाल शैली का विकास 17 वीं शताब्दी सी.इ. के लगभग हुआ माना जाता है। ऐतिहासिक रूप से इसकी लोकप्रियता मुगल साम्राज्य के पतन और हिंदी साहित्य में रीति (रूमानी) कविता के उदय के साथ परवान चढ़ी। खयाल शैली जो कि इसके पूर्ववर्ती ध्रुपद नामक शास्त्रीय संगीत की शाखा थी उन गणिकाओं के लिए विशेष रूप से उपयुक्त थी जो अपने मेहमानों के मनोरंजन के लिए शास्त्रीय संगीत और नृत्य को प्रदर्शित करने के साथ-साथ संरक्षित करती थी लेकिन दुनियावी रूप में। यह वो समय था जब वे ध्रुपद संगीत प्रतिरूप जिनकी उत्पत्ति अधिकांशत: पवित्र मूल से हुई थी अपनी शैली, ताल, क्रिया रूप और विचारधारा में आमूल-चूल परिवर्तनों के कारण रूपांतरित हो गए होंगे।

खयाल कलाकारों में से अधिकांश मुस्लिम थे और इसकी तकनीकी शब्दावली का अधिकांश हिस्सा उर्दू से लिया गया है। यद्यपि इसे शास्त्रीय संगीत परंपरा का एक विकसित और व्यवस्थित रूप माना जाता है, फिर भी खयाल की अधिकांश शब्दावली जन भाषा से उत्पन्न है।

रागमाला: दृश्य कला और शास्त्रीय संगीत

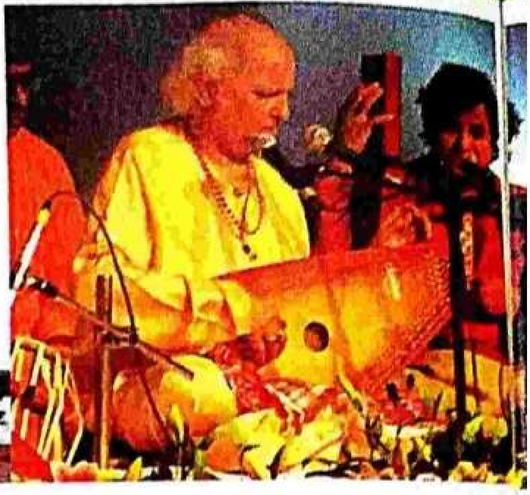
दृश्य कला और कविता के साथ शास्त्रीय संगीत के समामेलन का एक उत्कृष्ट उदाहरण मध्यकालीन भारत की चित्रकला शृंखला रागमाला (संगीत विधाओं की माला) की उत्पत्ति थी। यह भारतीय लघु चित्रकला की एक शैली थी जिसमें विभिन्न भारतीय संगीत











भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागों के आरंभिक संदर्भों में से एक बौद्ध ग्रन्थ सूत्रों में पाया जा सकता है। तिब्बत से प्राप्त 10 वीं शताब्दी की चार्यगीति (प्रदर्शन गीत) की पांडुलिपि में जो 8 वीं शताब्दी सी.इ. के महासिद्ध सराहपा से संबद्ध है शास्त्रीय संगीत रागों जैसे भैरवी और गुर्जरी का उल्लेख मिलता है।[5] भारत और नेपाल के हिमालयी क्षेत्र के विभिन्न भागों में जहां महायान - वज्रयान बौद्ध धर्म प्रचलित है, चार्यगीति और नृत्य के सूत्रों का पाठ और प्रदर्शन आज भी चलन में है।

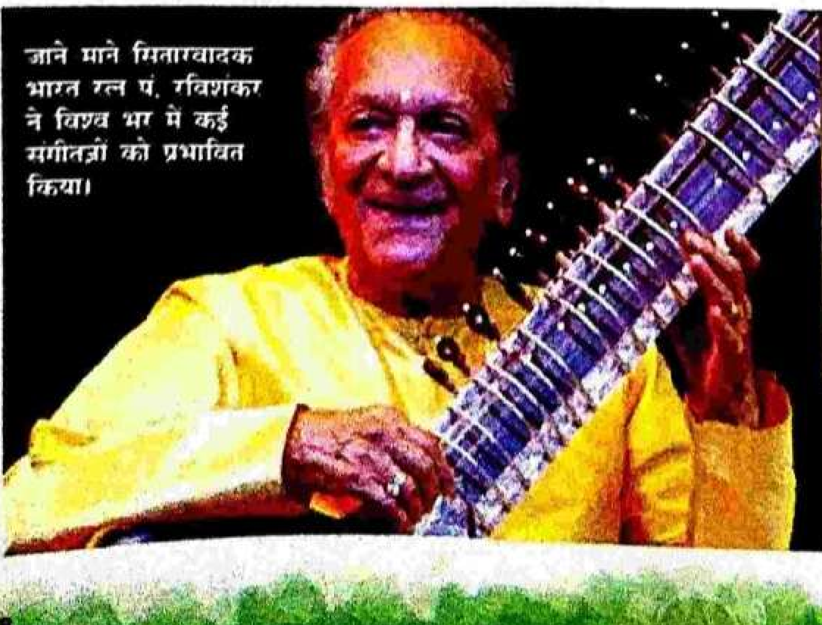
भारत के दक्षिणी भाग में एक लोकप्रिय प्रदर्शन शैली प्रबंध गान 11वीं से 16वीं शताब्दी के बीच विद्यमान थी। प्रबंध शब्द एक भली-भाँति परिभाषित रचना को दर्शाता है। यह कहा जाता है कि प्रत्येक प्रबंध विस्तृत था और इसमें पारंगता हासिल करने में कई वर्षों का समय लगता था। यह प्रबन्ध परंपरा थी जिसने धीरे-धीरे दो संबद्ध फिर भी विशिष्ट शास्त्रीय संगीत की शैलियों के आविर्भाव को प्रभावित किया जिसे अब हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत के रूप में जाना जाता है।

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में असम के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास में 15 वीं -16 वीं शताब्दी में वैष्णव परंपरा की एक महान विभूति संत-विद्वान, शंकरदेव के प्रयासों से सांस्कृतिक सुधार हुआ और अतीत की परंपराओं को पुनर्जीवित किया गया। उन्होंने संगीत (बोरगीत), और नृत्य (सत्रिया) के नए रूप ईजाद किए। इन शास्त्रीय संगीत और नृत्य परंपराओं ने पूर्वोत्तर क्षेत्र के साथ भारतीय सांस्कृतिक संपर्क को और भी मजबूत करने में मदद की। इसके अलावा, पूर्वोत्तर की वैष्णव परंपरा ने बंगाली भक्ति संगीत के प्रदर्शन को और अधिक परिष्कृत किया।

सिख धर्म शायद एकमात्र ऐसा धर्म है जो संगीत को अपनी मुख्य पूजा पद्धति के रूप में उपयोग करता है, जहां संगीत प्रार्थना और भेंट है। विभिन्न शैलियों का उपयोग करते हुए, सिख कीर्तन भारतीय शास्त्रीय संगीत रागों में रचे गए हैं - इसमें विधिवत उपासना के प्रत्यक्ष साधन के रूप में संगीत का उपयोग होता है। गुरु ग्रंथ साहिब में, शास्त्रीय संगीत के इकतीस रागों की स्वरलिपि को अपेक्षित विवरणों के साथ दिया गया है।

इस्लामी संदर्भ में, एक लोकप्रिय धारणा है कि इस्लाम में आमतौर पर संगीत की मनाही है। इस्लाम में संगीत का निषेध तब लागू होता है जब यह अल्लाह की पारलौकिक यथार्थता का चिंतन करने में एक बाधा के रूप में सांसारिक प्रलोभन से जुड़ा होता है। हालांकि, संगीत को भारत के सूफी संतों द्वारा हमेशा अलौकिक परम शक्ति के साथ जुड़ने के प्रयास में अपनी चेतना को तन्मयावस्था में ले जाने के लिए दरवेश नृत्यों और कव्वाली गायन में शामिल किया जाता है और सम्मानित किया जाता है।

इस प्रकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत ने भारत की समग्र संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसके अलावा, भारतीय शास्त्रीय संगीत के संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि

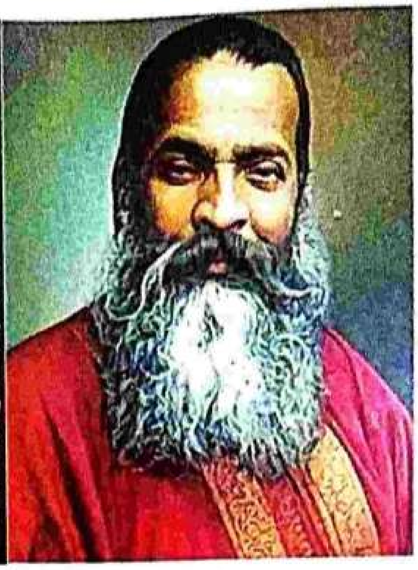


जाने माने सितारवादक भारत रत्न पं. रविशंकर ने विश्व भर में कई संगीतज्ञों को प्रभावित किया।



भारत रत्न मदुरै शन्मुखावादिवु सुब्बालक्ष्मी कर्नाटक संगीत की महान गायिका





हिंदुस्तानी संगीतकार पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने ही रघुपति राघव राजा राम का मूल गीत गाया था। उन्होंने 1901 में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की थी।



उस्ताद रहीमुद्दीन खां डागर

विधाओं या रागों का चित्रण किया गया था। हालांकि इन चित्रों के दृश्यों में कुछ मनमानापन मौजूद है क्योंकि उनके चित्रण और रंगों के संयोजन संगीत के प्रामाणिक ग्रंथों में उल्लेखित राग के निर्धारित रंग के साथ मेल नहीं खाते हैं फिर भी उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत की आसक्तिपूर्ण कल्पना और रचनात्मकता का साक्ष्य माना जाता है।

स्वर की शुचिता : भारतीय शास्त्रीय संगीत के एकीकरण का कारण

भारतीय शास्त्रीय संगीत के सभी रूपों के एकीकरण का एक और कारक स्वर की शुचिता को महत्त्व देना है। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ स्वर का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बताता है- *स्वयमेवरंजतिइतिस्वर:* - 'स्व', यानि स्वयं और 'रा' का अर्थ है, जो 'चमकता' है। इसलिए, स्वर के माध्यम से आत्म का प्रकाशित होना अपेक्षित है। ध्रुपद के महान फनकार, उस्ताद रहीमुद्दीन खां डागर ने सुविदित रूप से कहा था कि 'स्वर उसी का अच्छा जिसका ईमान सच्चा।'

स्वर की शुचिता पर एक सुन्दर कहानी है। यह हमारे समय के महानतम संगीतज्ञों में से एक पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने सुनाई थी।"

एक बार, इंदौर के समीप जंगल में विचरते हुए पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने टूटे फूटे मंदिर में एक संन्यासी को गाते हुए सुना। वह आवाज के आवेग से मंत्रमुग्ध हो गए; उन्होंने यह चमत्कार भी देखा कि खंडित मंदिर प्रज्ज्वलित होकर जगमगा रहा था। इस अनुभव से वह बेहद विचलित हो गए और उन्होंने संन्यासी से पूछा कि क्या वह गायन के इस प्रभावशाली शैली को सीख सकते हैं और क्या संन्यासी उन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार करेंगे। संन्यासी की अनिच्छा को देखते हुए, पंडितजी ने कहा कि वह सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हैं, और यहां तक कि संन्यासी भी बन सकते हैं, यदि वह उन्हें अपनी गायन में ऐसी शक्ति प्राप्त करना सिखाएंगे। 'नहीं', संन्यासी ने उत्तर दिया, "जब तुम्हारे स्वर में यह गुण आएगा तब तक तुम संन्यासी बन चुके होगे।'' ऐसा नहीं है कि संन्यासी बनने के बाद तुम्हें यह अपार बल और शक्ति प्राप्त

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

श्रीनिःशङ्कशार्ङ्गदेवप्रणीतः

संगीतरत्नाकरः ।

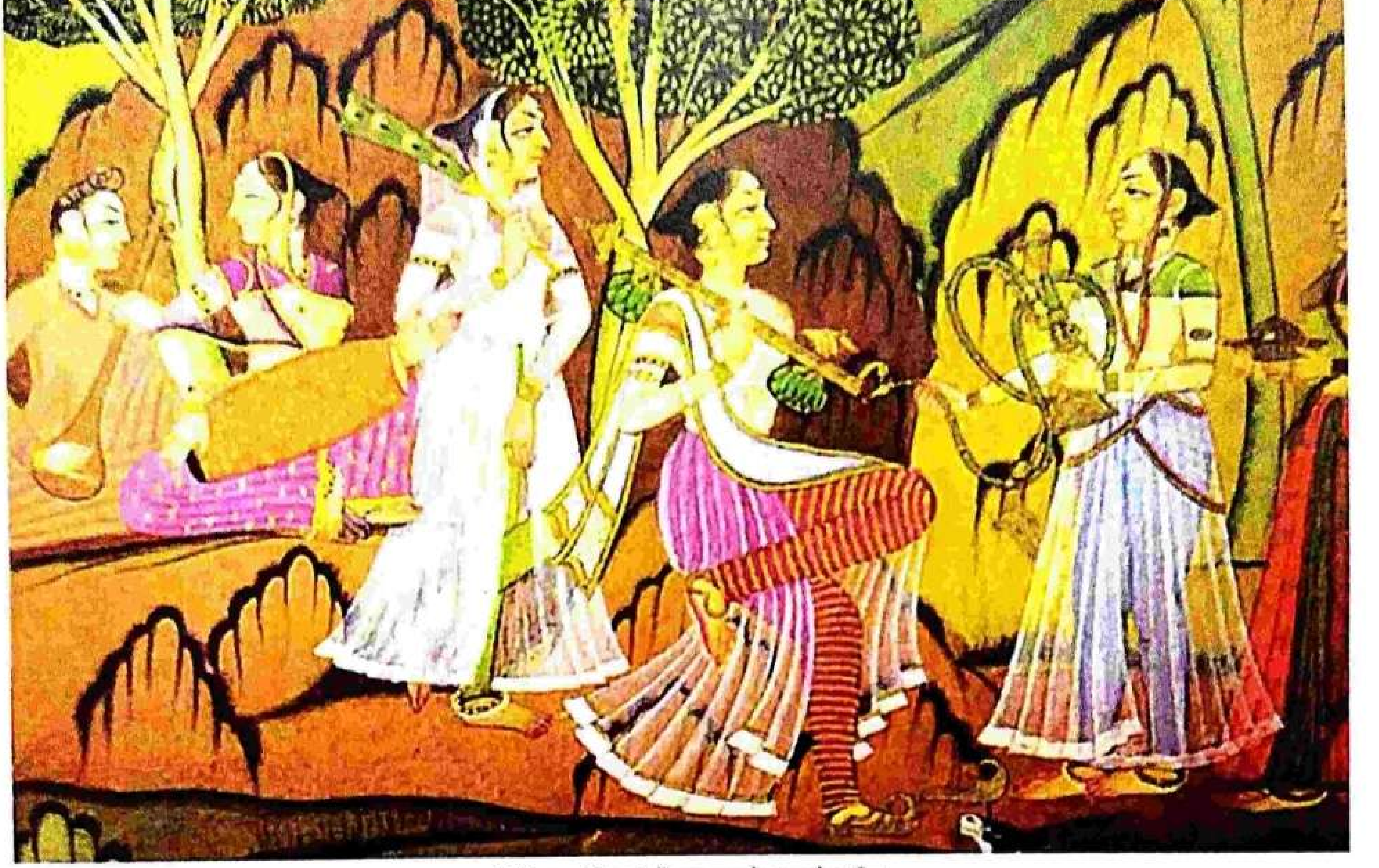
चतुरकल्लिनाथविरचितकलानिध्याख्यटीकासमेतः ।

प्रथमः स्वराध्यायः ।

तत्राऽऽदिमं पदार्थसंग्रहाख्यं प्रकरणम् ।

कर्णालम्बितकम्बलाश्वतरयोर्गीतामृतास्वादना-
दान्दोलीकृतमौलिनिर्झरनदीतारङ्गपाटश्रियः ।
नृत्यच्चन्द्रकलाकलापरिलसद्ब्रह्माण्डखण्डान्तरं
तं तूर्यत्रयपोषरूपवपुषं वन्दे भवानीपतिम् ॥ १ ॥
विघ्नौघहारिणं सर्वभक्ताभिमतकारिणम् ।
वारणास्यमहं वन्दे मौलावर्धेन्दुधारिणम् ॥ २ ॥
वाणि वीणालसद्वाणि पञ्चाशद्वर्णरूपिणि ।
पादानतसुरश्रेणि निवासं कुरु मन्मुखे ॥ ३ ॥
वन्दे वेदार्थतत्त्वज्ञं भुक्तिमुक्तिप्रदर्शकम् ।
सर्वागमविदं नित्यं चन्द्रभूषणदेशिकम् ॥ ४ ॥

13वीं शताब्दी में पं. शारंगदेव द्वारा रचित संस्कृत ग्रंथ संगीत रत्नाकर की पांडुलिपि। इसी के आधार पर उत्तर तथा दक्षिण भारतीय संगीत की पद्धति तैयार हुई।



विभिन्न संगीत यंत्रों का उपयोग करते चरित्र

होंगी। आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करने से व्यक्ति अंतर्मुखी होता है और संन्यासी बन जाता है। यह स्वर के लिए निर्धारित खोज है।

जैसे ही स्वर हमारे स्वभाव में प्रवेश करता है हमारा आत्म हमारे संगीत के माध्यम से प्रकाशित हो जाता है। यह संगीत साधकों का शुद्ध स्वर है जो संगीत को महत्वपूर्ण बनाता है।



सरोद वादक बाबा अल्लाउद्दीन खान (8 अक्टूबर 1862 6 सितंबर 1972) अन्य साज भी बखूबी बजाते थे। संगीतकार के अलावा वे बीसवीं सदी में भारतीय शास्त्रीय संगीत के जाने-माने प्राध्यापक (उस्ताद) थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि विशिष्ट सांस्कृतिक सरोकारों और ऐतिहासिक परंपराओं ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की ज्ञानवादी विविधता के उद्भव में योगदान दिया है। इसके परिणामस्वरूप विशिष्ट विश्व-दर्शनों का विकास हुआ है जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतीकरण के पीछे सांस्कृतिक रूपरेखा और मान्यताओं को रेखांकित करते हैं हालांकि इससे यह भी प्रकट होता है कि आध्यात्मिकता इस संगीत का मूल सिद्धांत बना हुआ है। ■

संदर्भ

1. धारणा 18 पद 41 विज्ञान भैरव तंत्र के अनुसार तंत्रयादीवाद्यशब्देसुदीर्घेषु क्रमसंस्थित: / अनन्यासित: प्रतयन्तो पराव्योमावापुर भवेत्। प्रसिद्ध संगीतज्ञ, ठाकुर जयदेव सिंह इस पद पर टिप्पणी करते हैं, "जब वाद्य संगीत की ध्वनि रुक जाती है, तब भी यह स्मृति में कंपन करता है। यदि योगी अपने मन को किसी और जगह भटकने की अनुमति नहीं देता है और संगीत की गूंज पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह सभी ध्वनि के स्रोत में अवशोषित हो जाएगा यथा परावक् और इस प्रकार भैरव के स्वरूप को प्राप्त होगा।" देखें, जयदेव सिंह। 2010, विज्ञानभैरव।
2. चैतन्यम सर्वभूतानाम विवर्तम जगदात्मा / नादब्रह्मतदानंदमअद्वितीयमउपस्महो, देखें, संगीत रत्नाकर, 1.3.1, पृ. 62.
3. फोनीम ध्वनि की एक इकाई है जो किसी भाषा में एक शब्द को दूसरे से अलग करती है।
4. छान्दोग्य उपनिषद 2.23.3-4 देखें, आंद्रे पेदो 1990, वाक्: द कंसेप्ट ऑफ़ सांउड, पृ. 17.
5. राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वानों ने इस ग्रन्थ की रचना 8वीं शताब्दी सी.इ. में मानी है।
6. देखें आलाप: ए डिस्कवरी ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक, पीपी. 34-35.